Annexure - (A)

UTILIZATION CERTIFICATE WITH UP-TO-DATE STATEMENT OF EXPENDITURE

(February 2023 to March 2024)

1. Sanction letter No. with date: RA/23/7398-7405, Dated: 24-01-2023
2. Title of the Project: महर्षि दयानंद सरस्वती का शिक्षा-शास्त्रीय योगदान
3. Name of Principle Investigator: Dr. Priyanka Arya
4. Name of Department: Sanskrit
5. Total Project Cost: Rs. 1,00000/
6. Statement of expenditure:

Sr. No.	Sanction Heads	Funds allocated in Rs.	Expenditure Rs.	Balance Rs.
a)	Hiring of Services	23,000/	00/	23,000/
b)	Equipment repair	5,000/	00/	5,000/
c)	Purchase of equipment	19,000/	18,981/	19/
d)	AMC's	5,000/	00/	5,000/
e)	Consumables	10,000/	9,970/	30/
f)	Contingency	8,000/	3,225/	4,775/
g)	Field work	20,000/	18,311/	1,689/
h)	Any other item	10,000/	9,950/	50/
	Grand Total	**1,00000/**	**60437/**	**39,563/**

1. Certified that out of **Rs. 1,00000/-** (One lacks only) of grant-in-aid, sanctioned vide No. **RA/23/7398-7405, Dated: 24-01-2023** during the year of 2023 in favor of **Dr. Priyanka Arya** (Principle Investigator), a sum of **60437/** has been utilized for the purpose of research for which it was sanctioned and that the balance of **39,563/** is remaining unutilized.

P.Arya
Signature of PI
Dated:
6/6/2024

Finance Officer
University of Jammu
Signature of Joint Registrar
Dated:

Deputy Registrar (Grants)
University of Jammu
Signature of Deputy Registrar
6/6/24
Dated:

UNIVERSITY OF JAMMU

UNIVERSITY OF JAMMU RESEARCH FUND (UoJRF)

Form – V

PROJECT COMPLETION REPORT

1. **Title of the project:** महर्षि दयानंद सरस्वती का शिक्षा-शास्त्रीय योगदान
2. **Name & Designation of Principle Investigator:** Dr. Priyanka Arya (Assistant Professor)
3. **Name & Designation of Co- Principle Investigator/s** Nil
4. **Duration of the Project:** One year
5. **Sanctioned grant**: 1,00000/-
6. **Date of initiation of the Project**: 24th January 2023
7. **Date of closure of the Project**: 31st March 2024
8. **Whether the Utilization Certificate and statement of expenditure has been submitted?** Yes/No (If yes, mention the date and append the photocopy of the same) (If no, the reasons thereof)
   Yes, submitted: **See as Annexure -** (A)
9. **Approved objectives: Attached**
10. **Title of the research paper published from out of the current project work** (If any, attach reprint)
    Under preparation
11. **Title of the research paper accepted for publication from current research work** (If any, attach the acceptance letter)
    Nil
12. **Report of the completed research project highlighting the deliverables** (Attach document – Min. 3000 words)
    Attached: **See as Annexure -** (B)

P.Arya

13. **Details of the consumables and non consumables (including equipment) material procured from current research project grant**

Sr. No.	Sanction Heads	Funds allocated in Rs.	Expenditure Rs.	Balance Rs.
a)	Hiring of Services	23,000/	00/	23,000/
b)	Equipment repair	5,000/	00/	5,000/
c)	Purchase of equipment	19,000/	18,981/	19/
d)	AMC's	5,000/	00/	5,000/
e)	Consumables	10,000/	9,970/	30/
f)	Contingency	8,000/	3,225/	4,775/
g)	Field work	20,000/	18,311/	1,689/
h)	Any other item	10,000/	9,950/	50/
Grand Total		**1,00000/**	**60437/**	**39,563/**

14. **Has the non-consumable material (including equipment) been handed over to the concerned department?** Yes/No (If yes, attach a certificate issued by concerned HoD in this regard) (If no, the reasons thereof)
No, the equipment purchased is being used in advancing the research problem

15. **Has the stock register carrying entries of consumables/non-consumables (Including equipment) handed over to the concerned Department?** Yes/No (If yes, attach a certificate issued by concerned HoD in this regard) If no, the reasons thereof)
Yes, the entries of consumables have been made and all the purchases have been entered and the register is being maintained by the principle investigator

16. **Was power point presentation of the current research work made before DRPMC by PI/Co-PI?** Yes/No (If yes, attach a certificate issued by concerned Dean/HoD in this regard) (If no, the reasons thereof)
Yes, See as Annexure - Nil

Comments of the concerned DRPMC: Nil

Members of the Concerned DRPMC: Nil

P. Arya

Dr. Priyanka Arya
(Principal Investigator of the Project)
Assistant Professor,
Department of Sanskrit,
University of Jammu,
Jammu, JKUT - 180006

Annexure (B)

महर्षि दयानंद सरस्वती का शिक्षा-शास्त्रीय योगदान
Maharshi Dayanand Saraswati Ka Shiksha Shastriya Yogadan

Final Report of the Research Project
Funded by
DRS office, University of Jammu

Under
Research and Seed Grant for Professor/Associate/Assistant Professor
Under the Head Quality Assurance Fund (DIQA)
vide order No. RA/23/7398-7405, Dated: 24-01-2023

Principle Investigator
Dr. Priyanka Arya
Assistant Professor, Department of Sanskrit,
University of Jammu, Jammu, JKUT -180006

महर्षि दयानन्द सरस्वती का शिक्षा–शास्त्रीय योगदान

Maharshi Dayanand Saraswati Ka Shiksha Shastriya Yogadan

भूमिका

महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदों एवं व्याकरण शास्त्र के अदभुत विद्वान् हुए, आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती शिक्षा शास्त्रीय अद्भुत योगदानों के लिए भारतीय ही नहीं अपितु विश्व इतिहास में प्रसिद्ध है। इन्होंने वेदादि शास्त्रों के आधार पर ऋषिकृत् शिक्षा पद्धति को अपनाकर समाज सुधार का अद्भुत अप्रतिम एवं अलौकिक कार्य किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन गुरुकुलीय आर्ष शिक्षा पद्धति को पुनः स्थापित करने का युगान्तरकारी कार्य किया और यही शिक्षा पद्धति वैदिक काल से महाभारत तथा बौद्धकाल तक भारतवर्ष में अक्षुण्ण प्रचलित रही। यह आर्षपाठविधि के नाम से ऋषिकृत् ग्रन्थों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इस पाठविधि से भौतिक तथा आध्यात्मिक अभयविध उन्नति रूप समस्त यथार्थ विधाओं का समुचितरूपेण समावेश हुआ है। जबकि अन्यान्य शिक्षा पद्धति में या तो केवल कहीं भौतिक उन्नति की बात ही है अथवा कोरी आध्यात्मिक उन्नति की बात है जो कि सर्वथा अधूरा, अपूर्ण, एकांगी कहलाती है।

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित इस आर्षपाठविधि से आदमी, मनुष्य बनता है। ''मनुष्य' से 'देव' बन जाता है तथा देव से वह ऋषि बनकर महनीय पदवी प्राप्त कर लेता है और वह धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय को पूर्ण करने में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार महर्षि 200 शताब्दी पूर्व ही अपनी दूरदृष्टि से शिक्षा पद्धति में मानव मूल्यों की आवश्यकता अनुभव कर ली थी और अपनी शिक्षा पद्धति में मुख्य लक्ष्यों मानवनिर्माण, स्वराष्ट्रोन्नति, स्वभाषाप्रेम, नैतिकता, मानवता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता को सर्वोपरि रखा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पाश्चात्य शिक्षा की आंधी व कुचक्र में फंसी हुई भारतीय जनमानस को बाहर निकाला। पाश्चात्य शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी, साक्षरतावृद्धि, भौतिक उन्नति व खाओ–पीओ मौज उड़ाओ का ही है। इस पद्धति से समाज में विकार उत्पन्न होता है। अतः यह अत्यावश्यक है कि मनुष्य अपने जीवन को वैदिक मूल्यों से जोड़कर भौतिक उन्नति के साथ–साथ आध्यात्मिक उन्नति की ओर भी अग्रसर हो।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की कथित क्रांतिकारी शिक्षा शास्त्रीय योगदान निम्नलिखित रूप में द्रष्टव्य है।

1) मानवमात्र को शिक्षा का समान अधिकार।

2) पाठशालाओं में सभी के साथ समान व्यवहार समान रहन–सहन व खान–पान।

3) सभी के लिए अनिवार्य शिक्षा।

4) वेदादि अध्ययन का सभी वर्णों का समान अधिकार।

5) स्त्रियों को वेद व सभी विधाओं के अध्ययन का अधिकार।

6) शूद्रों को यज्ञोपवीत धारण व वेदाध्ययन का अधिकार।

7) गुरुकुलों की स्थापना, व्यवस्था और आर्थिक प्रबंधन।

8) निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।

9) माता–पिता द्वारा घर में प्रारंभिक शिक्षा।

10) आठ वर्ष में बालक–बालिकाओं का उपनयन व वेदारम्भ।

11) विद्यार्थियों के गुण–दोष, संस्कार व व्यवहार पर विशेष बल देना।

12) शिक्षकों के गुण–दोष व व्यवहार।

परिचय

महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतीय इतिहास में नवजागरण के पुरोधा नाम से विश्व–विख्यात हैं। इन्होंने भारतीयों की आत्मा व प्राण को अनुप्राणित करने का गुरुतर कार्य किया है। इन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से विश्व इतिहास पर छाप छोड़ा है।

महर्षि दयानंद सरस्वती भारत, भारतीय ज्ञानविज्ञान एवं भारतीय श्रेष्ठ परंपराओं के पुरजोर समर्थक रहे हैं। विशेषकर वेद के ज्ञान विज्ञान को समाज में प्रवर्तित करना एवं वेद के ज्ञान विज्ञान के आधार पर भारतीयों के जीवन को श्रेष्ठ बनाने के प्रयास स्वरूप आर्यसमाज की स्थापना रूप कार्य को प्रत्येक भारतीय ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में एक स्वर में मान्यता मिली। ऋषि दयानंद के समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक अनेक योगदानों में से शिक्षा संबंधी योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। ऋषि दयानंद के अनेक ग्रंथों का आलोडन विलोडन करने के पश्चात् यह मान्यता दृढ़ एवं स्थिर होती है कि ऋषि दयानंद एक अद्‌भूत शिक्षाशास्त्री भी थे। जिस उत्कृष्ट शिक्षा पद्धति की कल्पना ऋषि दयानंद ने लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले की थी आज इतने वर्षों के पश्चात् भी वैसी दूरदर्शिता पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की कल्पना न ही किसी ने पूर्व में या पश्चात ही की।

आज के आधुनिक वा पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का एकमात्र लक्ष्य साक्षरता वृद्धि, भौतिक उन्नति, आजीविका एवं व्यवसाय संबंधी योग्यता हासिल करना ही रह गया है, परंतु इन सभी छोटे छोटे उद्‌देश्यों से प्राप्त होने वाले मुख्य लक्ष्य, मानवता, नैतिक मूल्य, राष्ट्रप्रेम आदि का कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

इन विषम परिस्थितियों में ऋषि दयानंद सरस्वती ने संपूर्ण शिक्षा दर्शन को एक नया आयाम दिया जिसका प्रभाव अनेक आधुनिक शिक्षाविदों पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। यहाँ ध्येय रहे कि ऋषि दयानंद ही वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का उद्‌घोष किया एवं मानव मात्र को शिक्षा का समान अधिकार प्राप्त हो ऐसी क्रांतिकारी घोषणा की। असमानता से भरे वातावरण में पाठशाला में सबके साथ समान व्यवहार, समान रहन–सहन, समान खानपान आदि की व्यवस्था हो ऐसा साहसिक कदम उठाने वाले ऋषि दयानंद प्रथम शिक्षा शास्त्री हैं। उन्होंने सबसे पहले 1874 में सत्यार्थ प्रकाश में सार्वजनिक रूप से स्वदेशी एवं स्वदेशी राज्य के श्रेष्ठ होने की घोषणा के साथ–साथ स्वराज्य प्राप्ति के विचार एवं उपायों की भी चर्चा की। देश की एकता एवं अखंडता के लिए स्वभाषा का त्याग कर संस्कृत और हिंदी को राजभाषा बनाने एवं इन्हीं भाषाओं में प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने को प्रमुखता दी। निर्विघ्न शिक्षा प्राप्ति के लिए अच्छे शैक्षिक वातावरण के निर्माण के लिए गांव एवं नगरों से दूर एकांत, शांत प्रदेश में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हो ऐसी व्यवस्था देने वाले ऋषि दयानंद के विचारों से ही प्रभावित होकर आज पब्लिक स्कूलों का जाल बिछा हुआ सर्वत्र नजर आता है। आधुनिक प्रारंभिक विद्यालयों में माता–पिता का भी साक्षात्कार लेने की जो प्रथा प्रचलित हुई उसे

भी ऋषि दयानंद ने अपने शिक्षा पद्धति में यह कहकर सम्मिलित कर लिया था कि 8 वर्ष तक संतान की शिक्षा का दायित्व माता–पिता का है और माता–पिता को सुशिक्षित और धर्मात्मा होना चाहिए तभी संताने सुशिक्षित और धर्मात्मा हो सकती हैं।

आज शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों में प्रायः नैतिक शिक्षा या नैतिक जीवन का अभाव दृष्टिगोचर होता है, जिसके समाधान के लिए ऋषि दयानंद ने उच्च शिक्षा के साथ–साथ माता–पिता एवं उनके अध्यापक एवं छात्रों के भी धार्मिक होने की व्यवस्था को प्रबलता दी थी।

ऋषि दयानंद की शिक्षा व्यवस्था में साहित्यिक, वैज्ञानिक, व्यावसायिक सुविधाओं के साथ–साथ भौतिक एवं आध्यात्मिक विद्याओं का भी अभूतपूर्व समन्वय प्राप्त होता है। महर्षि दयानंद सरस्वती के शिक्षा संबंधी अनेक मंतव्यों एवं विचारों को विस्तृत रूप से पढ़ने एवं देखने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं ऋषि की शिक्षा व्यवस्था राष्ट्र निर्माण के साथ–साथ आदमी से मनुष्य, मनुष्य से देव और देव से ऋषि बनने व बनाने वाली पद्धति है।

ऋषि दयानंद के जीवन क्षेत्र एवं व्यक्तित्व से संबंधित अनेक ग्रंन्थों का अवलोकन करने के पश्चात् यह विषय सुनिश्चित हो जाता है कि वे ना केवल धर्माचार्य, संशोधक, समाज सुधारक, राष्ट्र नेता थे अपितु एक महान शिक्षाशास्त्री भी थे, उनके शिक्षा परक सिद्धांतों का आधार वेद एवं अन्य शास्त्रों में वर्णित शिक्षा विषयक मंतव्य हैं। वेदों में शिक्षा के जो मौलिक सूत्र यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं उनका ही पल्लवन कालांतर में ब्राह्मण और उपनिषद् आदि ग्रंथों में किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में उल्लिखित शिक्षावल्ली का प्रकरण भी इस दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है जिसमें विद्या समाप्ति के पश्चात आचार्य द्वारा अनतेवासी को दिए गए दीक्षांत उपदेश को अत्यंत प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत किया गया है। सतत धर्म के आचरण के साथ–साथ विद्यार्थी जीवन से यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वाध्याय एवं प्रवचन का कदापि परित्याग ना करें। गृहस्थ दीक्षित होने के उपरांत उस दान देने में भी कभी संकोच नहीं करना चाहिए। कहा भी है – **यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।** आचार्यों के श्रेष्ठ आचरण का अनुकरण ही शिष्य को करना चाहिए ना कि दूसरे आचरणों का भी।

ऋषि दयानंद के अनेक ग्रंथों के विस्तृत अवलोकन करने के पश्चात हमें निम्न सिद्धांत प्राप्त हुए हैं –

1. प्रदीयमान शिक्षा का लक्ष्य चरित्र निर्माण के साथ–साथ सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास करना भी होना चाहिए और ऐसा समग्र शिक्षण गुरुकुल में ही संभव है जो नगरों और बस्तियों के भीड़भाड़ वाले वातावरण से सर्वथा दूर हो।

2. पाठ्य पुस्तकों के चयन में ऋषि दयानंद अतिरिक्त सावधानी बरतते हैं। साक्षात्कृतधर्मा, तत्वद्रष्टा ऋषियों के बनाए ग्रंथ को ही शिक्षा व्यवस्था में शामिल करने के पक्ष में ऋषि दयानंद सर्वदा रहते हैं।

3. संस्कृत तथा मातृभाषा के अतिरिक्त सुविधा के अनुसार याथा शक्ति अन्य देश की भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है।

4. शास्त्र शिक्षण के साथ–साथ कला, कौशल, उद्योग एवं प्राविधिक विषयों को सिखाने की व्यवस्था भी गुरुकुल में समुचित होनी चाहिए, ताकि छात्र अपने भावी जीवन में जीविकोपार्जन की समस्या न हो।

5. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही रहे, जिससे विभिन्न विद्याओं को ग्रहण करने में विद्यार्थियों को अति सुगमता हो सके।

6. सहशिक्षा को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए अपितु पूर्ण बहिष्कार भी करना चाहिए।

7. कन्याओं के शिक्षण को भी उतना ही महत्व मिलना चाहिए जितना बालकों की शिक्षा को मिलता है।

8. शिक्षा के क्षेत्र में राजा और रंक, गरीब और अमीर का भेदभाव मिटाकर प्रत्येक को समान शिक्षा मिलनी चाहिए एवं प्रत्येक छात्र को अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए।

9. शिक्षा द्वारा स्वाभिमान, देशप्रेम, ईश्वरभक्ति, स्वावलंबन, श्रेष्ठ नागरिक निर्माण आदि उद्देश्यों की अवश्य पूर्ति होनी चाहिए।

10. शिक्षा का दायित्व माता–पिता का है और आचार्य को भी उसमें अपना समान दायित्व अनुभव करना चाहिए।

शिक्षा को उच्च गुणवत्ता युक्त बनाकर समाज को सुशिक्षित किया जा सकता है और शिक्षित समाज में रहने वाले नागरिको को कर्तव्यनिष्ठ बना कर उन्हें श्रेष्ठ नागरिक बनाया जा सकता है। ऋषि दयानंद के ग्रंथों का विहंगम अवलोकन करने के पश्चात हम इस तथ्य पर पहुंचे हैं कि ऋषि दयानंद के प्रमुख प्रायः सभी ग्रंथों में शिक्षा व्यवस्था के सुंदर उपाय व वर्तमान शिक्षा प्रणाली को और भी अधिक व्यवहारिक एवं उपयोगी बनाने के अनेक तत्व प्राप्त हुए हैं। ऋषि दयानंद ने वेद से लेकर ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि अनेक ग्रंथों का अवलोकन एवं विहंगम पर्यालोचन करके उनमें से अनेक उपयोगी तत्व, जो शिक्षा से संबंध रखते हैं, उनका विवेचन अपने सभी ग्रंथों में किया है। शिक्षा सम्बन्धी इन अनमोल रत्नों को खोजने के लिए ऋषि दयानंद के प्रायः सभी ग्रंथों का अवलोकन किया गया है। जिनमें कतिपय प्रमुख ग्रंथ हैं – ऋग्वेद भाष्य, यजुर्वेद भाष्य, ऋग्वेदादि–भाष्य–भूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, आर्योद्देश्यरत्नमाला, भ्रांति निवारण, संस्कृत–वाक्य–प्रबोध, भ्रमोच्छेदन, गोकरुणानिधि, वेदांगप्रकाश (14 भाग) आदि सभी ग्रंथों का सूक्ष्म अवलोकन करके शिक्षा से संबंधित अनेक तथ्यों एवं समाजोपयोगी अमूल्य रत्नों को समाज एवं विशेष करके छात्र वर्ग के सामने लाने का प्रयास किया है।

ऋषि दयानंद की यह स्पष्ट मान्यता रही है कि शिक्षा द्वारा छात्रों में धार्मिक, चारित्रिक एवं नैतिक गुणों का आधान सहजतया ही कराया जा सकता है। इसलिए विद्यारंभ के पहले उपनयन तथा वेदारंभ संस्कारों की विधि तथा व्याख्या लिखते समय वे छात्रों में उत्तम गुणों का आधान कराने का प्रमुख दायित्व आचार्य पर डालते हैं। ऋषि के अनुसार आचार ग्रहण कराने के कारण ही आचार्य शब्द की इतनी महत्ता एवं सार्थकता है। वैसे तो बाल्य समय में चरित्र निर्माण में माता–पिता की भी भूमिका आवश्यक होती है, पुनरपि गुरुकुल में प्रविष्ट होने के पश्चात छात्र के व्यक्तित्व के मुख्यतया विकास का दायित्व आचार्य पर ही होता है। छात्र का मानसिक एवं बौद्धिक विकास तभी संभव है, जब उसके शारीरिक बल को विकसित करने का भी उचित अवसर प्राप्त है। इस प्रकार शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वविध विकास के लिए ऋषि दयानंद ने ब्रह्मचर्य आदि अनेक नियमों के पालन पर अत्यधिक जोर दिया है। ऋषि दयानंद के शिक्षा विषयक दर्शन में गुरु एवं शिष्य का संबंध पिता पुत्र के समान माना गया है।

ऋषि दयानंद के सभी ग्रंथों का अवलोकन करके शिक्षा संबंधी अनेक तत्वों को निकालकर छात्र जीवन के लिए उपयोगी बनाने का प्रयास किया है तथा अनेक विचारों को छात्रों में प्रतिष्ठापित करके श्रेष्ठ छात्र और श्रेष्ठ छात्रों से ही श्रेष्ठ समाज व श्रेष्ठ समाज से श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण करने हेतु इस विषय के माध्यम से अनेक ग्रन्थों का अवलोकन कर महर्षि दयानन्द के शिक्षा शास्त्रीय योगदानों को इस शोध में एकत्रित किया गया है।

साहित्यिक सर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य शिक्षा, शिक्षा की परिभाषा, शिक्षा की आवश्यकता, शिक्षा की उपयोगिता, शिक्षा में नैतिक तत्व आदि अनेक विषयों को ऋषि दयानंद के ग्रंथों से निकाल कर लोक जीवन के लिए उपयोगी ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया है। प्रकृत शोध कार्य करने से पूर्व इस प्रश्न का उत्तर ढूंढना भी अति महत्वपूर्ण हो गया था कि इस विषय संबंध हेतु शोध कार्यों का अवलोकन किया जाए एतदर्थ कतिपय निम्न ग्रन्थों का अवलोकन किया गया है –

- स्वामी दयानन्द का शिक्षादर्शन, रुद्रदत्त शर्मा, पंजाब विश्वविद्यालय, 1997 (पी.एच.डी)
- स्वामी दयानन्द एवं पुराणों का महत्व, दूलीचन्द शर्मा, कुरुक्षेत्र, 1985. (पी.एच.डी)
- महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदादि–भाष्य–भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन, कृष्णपाल गंगवार, जोधपुर, 1984, (पी.एच.डी)
- महर्षि दयानन्द के परिप्रेक्ष्य में महाभारत में निर्दिष्ट धर्मों व दर्शनों का समीक्षात्मक अध्ययन, राजकुमारी शर्मा, 1988, (पी.एच.डी)
- दयानन्द का यजुर्वेद भाष्य एवं माध्यन्दिन शतपथः एक तुलनात्मक अध्ययन, वेदपाल वर्णी, पंजाब 1985, (पी.एच.डी)
- दयानन्ददिग्विजय–महाकाव्यस्य आलोचनात्मकमध्ययनम्, सत्यपाल शास्त्री, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1980, (पी.एच.डी)

- Socity and polity in Yajurvad-Bhashya of Dayanand Saraswati, Ranjit Kour, Kurukshetra, 1983 (Ph.D)
- Educational systems as revealed in the Sanskrit texts of Gupta period, Mitali chattopadhyaya, Jadhavpur, 1991, (Ph.D)
- Principles of Education as depicted in Sanskrit, Pali and Prakrit texts from earliar time to the 12th Century, R. Vijay Tiwari, Jabalpur, 1983 (Ph.D)
- Education : A comperative study of Philosophical foundation of India and the West, K.V.S.N. Murty, Andhra, 1997, (Ph.D)

उद्देश्य पूर्ति

ऋषि दयानंद ने ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यंत सभी ऋषि–मुनियों की परंपराओं का एवं वेद से लेकर उनके समय पर्यंत उपलब्ध अनेक ग्रंथों का अनुशीलन, परिशीलन करके जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाले अनेक विचारों को, मंत्रों को, अपने अनेक ग्रंथों में पदे पदे स्थान दिया है। इस शोध कार्य से यह दृढ़ परिणाम प्राप्त हुए हैं कि जिससे कि छात्रावस्था में कोमल मनो मस्तिष्क में यदि ऋषि दयानंद द्वारा प्रतिपादित इन संस्कारयुक्त एवं अति आवश्यक शिक्षा विषयक तत्वों का मस्तिष्क में बार–बार

प्रवेश कराया गया या उनसे परिचय कराया गया तो निश्चय ही वे संस्कार उनके जीवन को परिवर्तित करने में आवश्यक भूमिका एवं उपयोगिता निभाएंगे। वर्तमान जीवन को, समाज को एवं राष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने के लिए इस क्रांतिकारी उपाय से हम समाज एवं राष्ट्रजीवन को श्रेष्ठ बना सकते हैं एवं शिक्षा में एक सुदृढ़ क्रांति का संचार भी कर सकते हैं।

परिणाम

महर्षि दयानन्द के लिखे हुए ग्रन्थों में शिक्षा शास्त्रीय योगदानों से निम्न परिणाम प्राप्त हुए हैं –

- ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा आधुनिक कालीन शिक्षा व्यवस्था को समग्र व सर्वोपयोगी बनाने हेतु कुछ अद्भूत वैदिक सुझावों की प्राप्ति हुई है।
- ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा वेदादि सत्य शास्त्रों से प्रमाणित जिन सिद्धान्तों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में लागू कराना चाहते थे, उनका विस्तृत विवरण प्राप्त हुआ है।
- प्राचीन काल से चली आ रही गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के कतिपय विशेष सुझावों व सिद्धान्तों से नवीन दृष्टि की प्राप्ति हुई है।
- भारतीय प्रमुख शिक्षा शास्त्रियों में ऋषि दयानन्द के उचित स्थान का महत्व एवं विवरण प्रदर्शित किया गया है।
- महर्षि दयानन्द की शैक्षणिक पद्धति द्वारा मानव निर्माण की प्राचीन पद्धति का उद्घाटन किया गया है।

सामग्री संकलन

इस वैज्ञानिक एवं उत्तम शोध कार्य के लिए सामग्री संकलन किया गया जिसके अन्तर्गत प्रमुख भारतीय शिक्षा दार्शनिकों के कतिपय ग्रंथों का संकलन किया गया, तत्पश्चात ऋषि दयानन्द रचित सभी प्रमुख ग्रन्थों का अध्ययन एवं आलोडन किया गया, जिसके लिए भारत के राष्ट्रीय एवं अन्य शोध संस्थानों, विश्वविद्यालय के ग्रंथालयों आदि का समयानुसार पर्यवेक्षण किया गया। यथा –

1. जम्मू विश्वविद्यालय, संस्कृत विभाग, पुस्तकालय
2. जम्मू विश्वविद्यालय, केंद्रीय पुस्तकालय
3. पुस्तकालय, आर्य प्रतिनिधि सभा, जम्मू नगर
4. पुस्तकालय, डीएवी पब्लिक स्कूल, नागवणि, जम्मू
5. पुस्तकालय, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली
6. पुस्तकालय, परोपकारिणी सभा, अजमेर
7. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
8. संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
9. पुस्तकालय, वी.वी.आर. आई., होशियारपुर

इत्यादि अनेक विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में जाकर सामग्री को एकत्र किया गया है एवं अनेक स्थानों, संस्थाओं में जाकर इस विषय से संबंधित विशेषज्ञों की सहायता भी ली गई है। यथा –

1. नजदीक एवं सुदूरवर्ती पुस्तकालयों में जाकर इस विषय से संबंधित आवश्यक सामग्री का संकलन किया गया।

2. इस विषय के विशेषज्ञ विद्वानों से यथासंभव साक्षात्कार, वार्ता, पत्राचार, दूरभाष, ईमेल आदि से भी सामग्री संकलन किया गया।
3. एकत्रित सामग्री को विषय वस्तु के अनुसार मूर्त रूप देकर शोध कार्य को सभी दृष्टियों से समृद्धशाली बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है, जिससे विषय छात्रों के एवं सामान्य मनुष्यों के मस्तिष्क को सहज रूप से प्रभावित करने में सक्षम है।

ऋग्वेदभाष्य में प्राप्त विषयक तत्व

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के मात्र 59 वर्षों के स्वल्प काल में यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य किया तथा ऋग्वेद के 7/2/66 मण्डल तक भाष्य किया। इन भाष्यों के माध्यम से हम महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षा शास्त्रीय योगदान को कतिपय मन्त्रों के उदाहरणों से समझ सकते हैं। यथा –

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः।।[1]

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं – हे इन्द्र=विद्या देने वाले। जो आपकी बल करने वाली परमपूजित धनयुक्त नीति जरित्रे=विद्या की स्तुति करने वाले के लिए श्रेष्ठ धन को निश्चय से पूरा करती है। स्तुति करने वालों के लिए शिक्षा देती है किसी को कष्ट नहीं देती। वह हमारे लिए विस्तृत धन प्राप्त कराती है। उस नीति को प्राप्त होकर हम लोग औरों को उपदेश दे।

ऋषिकृत् ऋग्वेद एवं यजुर्वेद भाष्यों के सहस्राधिक मन्त्रों में शिक्षा परक दृष्टि हमें पदे–पदे प्राप्त होती है। अन्य मन्त्रों में शिक्ष शब्द का अर्थ द्रष्टव्य है। शिक्षतम्[2] – विद्योपादानं कारयतम्, शिक्षति–विद्यां गृह्णाति ग्राहयति वा अर्थात् विद्या को ग्रहण करना वा करवाना दोनों अर्थ समन्वित हैं।[3]

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में ऋग्वेद में एक सूक्त द्रष्टव्य है जिसमें 7 मन्त्र है। इनमें सर्वत्र महर्षि दयानन्द ने स्त्रियों की प्रशस्तिपरक गौरवपूर्ण अर्थ किया है। तथथा – "**आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः**"।[4] अर्थात् हे पुत्रियो। तुम इस प्रकार विद्या ग्रहण बड़े संयम, नियम से करो जैसी सारथी घोड़ों को रथ में जोड़कर नियम से चलाता है। इसी प्रसंग में अगले मन्त्र में कहते हैं। बेटियो। तुम अपनी विद्या प्राप्ति रूपी यज्ञ को बढ़ाओ, उसमें शिथिलता मत करो जैसे दिन क्रम से आते और जाते रहते है। जिस प्रकार राही बराबर चलते रहते है, उसी प्रकार तुम भी निरन्तर गतिमान् हो जाओ अन्यथा यह समय हाथ नहीं आएगा।[5]

महर्षि दयानन्द ने "**स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ**"[6] कहकर नारियों को यज्ञ की ब्रह्मा पद पर प्रतिष्ठित किया उनका यह वेदानुमोदित सिद्धान्त है कि वेदों को पढ़ने का अधिकार सभी का है स्त्री हो अथवा शूद्र हो कोई भी वेद पढ़ सकता है यज्ञ कर सकता है उपनयन अथवा यज्ञोपवीत धारण कर सकता है इसलिए अपने शिक्षा शास्त्रीय योगदानों के लिए हमेशा ही बहुचर्चित रहे।

---

1 ऋ॰ 2/11/21
2 ऋ॰ भा॰ 1/109/7
3 ऋ॰ भा॰ 3/59/2
4 ऋ॰ भा॰ 7/34/4
5 ऋ॰ 7/34/5 अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत।
6 ऋ॰ 8/33/19

यजुर्वेद भाष्य में प्राप्त शिक्षा विषयक तत्व

यजुर्वेद के मन्त्रार्थ में कहते हैं – हे विद्याशील स्त्रियों। तुम अच्छे गुणों से युक्त होकर याज्ञिक कार्यों में अपने पतियों को सहायता देने वाली बनो तथा सोमादि औषधियों का पान करती हुई ऐश्वर्य की वृद्धि करो।[1]

इस प्रकार के नारी से संबंधित शिक्षोपयोगी सैकड़ों उदाहरण ऋषिवर के वेदभाष्य में प्राप्त होते हैं। महर्षि ने "**यथेमां वाचं कल्याणीम् आवदानि जनेभ्यः**[2] इस मन्त्र का भाष्य करते हुए बताया कि परमेश्वर ने स्त्री–पुरुष आबाल वृद्ध सबको वेद पढ़ने का अधिकार दिया है तथा स्त्री–पुरुष सबको वेद पढ़ने का अधिकार दिया है। सभी स्त्री–पुरुष को यज्ञोपवीत धारण करने[3] योगाभ्यास आदि करने[4] तथा गायत्री मन्त्र जाप करने का अधिकार है। महर्षि दयानन्द ने स्त्री शिक्षा के संबंध में अत्यन्त उदात्त भाव प्रस्तुत किया है, ऋग्वेद के मन्त्रार्थ में वे कहते हैं सरस्वती अर्थात् विदुषी स्त्री जो स्वयं मधुर और सत्य वचनों का प्रयोग करती है वैसा ही करने की अन्यों को प्रेरणा देती हुई उत्तम बुद्धिवाद व परामर्श देती हुई सभी प्रकार के यज्ञों को धारण करती है।[5]

व्यवहारभानु में प्राप्त शिक्षा विषयक तत्व

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित लघु पुस्तक 'व्यवहार भानु" अर्थात् व्यवहार का सूर्य दृष्टान्त के माध्यम से बालोपयोगी तथा व्यवहार कौशल सीखने की अद्भुत कृति है। इस लघु पुस्तक में प्रश्न और उत्तर के माध्यम से तथा छोटी–छोटी रोचक कहानियों के माध्यम से सुसन्तान का लक्षण, मूर्ख का लक्षण, माता–पिता, आचार्य के लक्षण, शूरवीर, जड़बुद्धि–तीव्रबुद्धि इत्यादि का लक्षण व परिभाषा बताते हुए जीवनोपयोगी शैक्षणिक तथ्यों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

इस लघु पुस्तक में सर्वप्रथम पढ़ाने वालों के लक्षण करते हुए महर्षि लिखते हैं–

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।

यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।[6]

अर्थात् जिसको आत्मज्ञान, सम्यक् आरंभ अर्थात् जो निकम्मा, आलसी कभी न रहे, सुख–दुख, हानि–लाभ, मान–अपमान, निन्दा–स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे। धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, जिसके मन को उत्तम–उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्ध की वस्तु आकर्षण न कर सके, वही पण्डित कहलाता है। इस प्रकार के 6 श्लोकों में महर्षि ने पढ़ाने वालों के गुणों की विवेचना की है। साथ ही वे इस प्रसंग के सार रूप में लिखते हैं–

जहाँ ऐसे–ऐसे सत्पुरुष पढ़ाने और बुद्धिमान पढ़ने वाले होते है वहां विद्या और धर्म की वृद्धि होकर सदा आनन्द ही बढ़ता जाता है। इसी क्रम में प्रश्न करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि "**कैसे**

---

1 श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः। ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयेतोपहूताः सोमस्य पिबत।। यजु॰ 6/34

2 यजु॰ 26/2

3 उपदेशमंजरीव्याख्यान 7, यज्ञ संस्कार विषय।

4 सत्यार्थ प्रकाश प्राणायोम शिक्षा विषय।

5 चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरसस्वती।। ऋ॰ 1/3/11

6 महा॰ उद्योग॰ 33/16

मनुष्य पढ़ाने और उपदेश करने वाले नहीं होने चाहिए?[1]" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मूर्ख के लक्षण बताए हैं – अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामना'। "**अर्थाश्चाकर्मणा प्रेप्सुः मूढ इत्युच्यते बुधैः।।**"[2] अर्थात् जो किसी विद्या को न पढ़ और किसी विद्वान् का उपदेश न सुनकर बड़ा घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े–बडे कामों की इच्छा करने हारा और बिना परिश्रम के पदार्थों की प्राप्ति में उत्साही होता है, उसी मनुष्य को विद्वान लोग मूर्ख कहते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य श्लोक को उद्धृत करते हुए कहते हैं – "**अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते। अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः।।**"[3] अर्थात् जो बिना बुलाए जहाँ–तहाँ समादि स्थानों में प्रवेश कर सत्कार और उच्चासन को चाहे वा ऐसे रीति से बैठे कि सब सत्पुरुषों को उसका आचरण अप्रिय विदित हो। बिना पूछे बहुत अण्ड–बण्ड बके और अविश्वासियों में विश्वासी होकर सुखों की हानि कर लेवे, वही मनुष्य मूढ़बुद्धि और मनुष्यों में नीच कहलाता है। और आगे इसी प्रसंग में कहा गया कि जहाँ ऐसे–ऐसे मूढ़ मनुष्य पठन–पाठन आदि व्यवहारों को करने हारे होते है। वहाँ सुखों का तो दर्शन कहा? इसलिए बुद्धिमान् लोग ऐसे–ऐसे मूढ़ों का प्रसंग वा इनके साथ पठन–पाठनक्रिया को व्यर्थ समझकर पुर्वोक्त धार्मिक विद्वानों का प्रसंग और उन्हीं से विद्या का अभ्यास किया करे और सुशील बुद्धिमान् विद्यार्थियों को ही पढ़ाया करें।

व्यवहारभानु में लेखक ने शिक्षा पद्धति में सर्वत्र धर्म, संस्कार, ईश्वर भक्ति की बात की है। विद्यार्थियों को धार्मिक, संस्कारी, आस्तिक, आज्ञाकारी बनाने का कर्तव्य माता–पिता एवं आचार्य का ही होता है। वे कहते हैं कि अपने सन्तान और शिष्यों को ईश्वर की उपासना, धर्म, अधर्म, प्रमाण, प्रमेय, सत्य, मिथ्या, पाखण्ड, वेद, शास्त्र आदि के लक्षण और उनके स्वरूप का यथावत् बोध करे और सामर्थ्य के अनुकूल उनको वेद शास्त्रों के वचन कण्ठस्थ कराकर विद्या पढ़ने आचार्य के अनुकूल रहने की रीति भी जना देवे कि जिससे विद्या प्राप्ति आदि प्रयोजन निर्विघ्न सिद्ध हों, वे ही माता–पिता और आचार्य कहलाते हैं।[4]

वे कहते हैं विद्या चार कर्मों से आती है तद्यथा – "**चतुर्भिः प्रकारैः विद्योपयुक्ता भवति। आगम–कालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति।।**"[5] अर्थात् विद्या चार प्रकार में काम आती है –

1) **आगमकाल** – जिससे मनुष्य पढ़ाने वाले से सावधान होकर, ध्यान देके, विद्यादि पदार्थ ग्रहण कर सके। वह आगमकाल होता है।

2) **स्वाध्यायकाल** उसे कहते हैं कि जो पठन समय में आचार्य के मुख से शब्द अर्थ एवं सम्बन्धों की बातें प्रकाशित हों, उनको एकांत में स्वस्थचित्त होकर पूर्वापर विचार के ठीक–ठीक हृदय में दृढ़ कर सके।

3) **प्रवचनकाल** – प्रवचनकाल उसको कहते हैं कि जिससे दूसरे को प्रीति से विद्याओं को पढ़ा सकना।

---

[1] व्यवहारभानु पृ॰ 7
[2] महा॰ उद्योग॰ 33
[3] महा॰ उद्योग विदुरप्रजागर अ॰ 32
[4] व्यवहारभानु पृ॰ 12
[5] महा॰ अ॰ 1/1/1 आ॰।

4) व्यवहार काल – व्यवहारकाल उसे कहते हैं कि जब अपनी आत्मा में सत्य विद्या होती है तब यह करना, यह नहीं करना वह ठीक–ठीक सिद्ध हो कि वैसा ही आचरण करना हो सके। यह चार प्रयोजन हैं तथा अन्य भी चार कर्म विद्याप्राप्ति के लिए हैं – श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार।

इस प्रकार संक्षेपता यह कहा जा सकता है कि इस लघु व्यवहारभानु पुस्तिका में महर्षि दयानन्द ने शिक्षा पद्धति की मूल बाते की हैं जिससे बालक एक सुसंस्कृत, धार्मिक शिक्षाविद् बन सके।

उपदेश मंजरी में प्राप्त शिक्षा विषयक तत्व

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन काल में अनेक प्रवचन तथा उपदेश भारत देश के विभिन्न राज्यों व प्रान्तों में जाकर दिया उन्हीं उपदेशो का संकलन "उपदेश मंजरी" नामक लघु ग्रन्थ में संगृहीत है। इस ग्रन्थ में उपदेश के माध्यम से महर्षि दयानन्द ने 14 विषयों पर व्याख्यान प्रदान किया है जिसमें पठन–पाठन, विधि को लेकर उपदेश लिखित रूप में वर्णित हैं। उपदेश मंजरी में 14 विद्याएं एवं उनकी पठन–पाठन की विधि महर्षि दयानन्द ने प्रदर्शित की है।

विद्या का इतिहास बताते हुए वे उपदेश मंजरी में कहते हैं – अब संक्षेप रीति से विद्या का इतिहास कहा जाता है कि सबसे पहला विद्वान् देव ब्रह्मा हुआ। इसने अग्नि, वायु, आदित्य, और अङ्गिरा चार ऋषियों के पास वेद पढ़ा। इस ब्रह्मा का पुत्र विराट्, उसका पुत्र मनु, मनु के दश पुत्र मरीचि, अत्रि अंगिरा आदि थे। इस समय में पढ़ने पढ़ाने की रीति क्या थी, यह सरलता से विदित हो सकता है। ऋग्वेद की इक्कीस शाखा, यजुर्वेद की एक सौ एक शाखा, सामवेद की एक हजार शाखा और अथर्ववेद की नव शाखा थीं। इसी तरह ग्यारह सौ इकत्तीस[1] शाखा पढ़ने पढ़ाने के लिए थीं। चारों वेदों को अर्थ सहित जानने वाला जो यज्ञ को करने वाला होता था उसको ब्रह्मा कहते थे। ब्राह्मणों के बनाये हुए जो वेदों के व्याख्यान थे उनको ब्राह्मण पुस्तक कहा जाता था। ऐसे ब्राह्मण और अनुब्राह्मण रूप बहुत–सी पुस्तकें हैं। साफ पानी और हवा जिन एकान्त स्थानों की होती थी, ऐसे एकान्त स्थानों पर जाकर रहने वाले ऋषि मन्त्रद्रष्टा, श्रवण वा मनन करने वाले वा पदार्थ विवेचन करने वाले, ब्रह्म–विचार करने के वास्ते वा सिद्धान्तों के निश्चय करने के लिए नैमिषारण्य आदि स्थानों में सभा करते थे।

एक महर्षि पाणिनि की बनाई हुई अष्टाध्यायी में ही देखो कितने नाम ऋषियों के आये हैं। आजकल के स्वेच्छाचारी वैरागियों के समूह को देखकर कृपापूर्वक प्राचीन ऋषियों का अनुमान कदापि न कीजिए। सब तैयार की हुई पुस्तकों के आधार पर ऋषियों की सभा में विचार होता था।

राज–सभा के विषय में मनुजी कहते हैं कि –

मौलाञ्छास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।।
अपि यत् सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्।।
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम्।

---

[1] यथार्थ में यह संख्या चार वेद और 1127 शाखाओं को मिलाकर बनती है।

स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ।।[1]

तेषां स्वं स्वमभिमतं प्रायमुपलभ्य पृथक्।

समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः।।[2]

अपने राज्य और देश में उत्पन्न हुए वेद वा शास्त्रों के जाननेवाले, शूरवीर, कवि, गृहस्थ, अनुभवकर्त्ता सात अथवा आठ धार्मिक बुद्धिमान् मन्त्री राजा को रखने चाहिएँ, क्योंकि सहायता बिना लिये साधारण काम भी एक को करना कठिन हो जाता है। फिर बड़े भारी राज्य का काम एक से कैसे हो सकता है ? इसलिए एक को राजा बनाना और उसी की बुद्धि पर सारे काम का बोझ रखना बुद्धिमानी नहीं है। निदान महाराज को उचित है कि मन्त्रियों समेत छह बातों पर विचार करें – 1. मित्र और 2. शत्रु में चतुरता, 3. अपनी उन्नति, 4. अपना स्थान, 5. शत्रु के आक्रमण से देश की रक्षा, 6. विजय किये हुए देशों की रक्षा, स्वास्थ्य आदि प्रत्येक विषय पर विचार करके यथार्थ निर्णय से जो कुछ अपनी और दूसरों की भलाई की बात विदित हो उसे करना।

इन श्लोकों से राज–सभा का वर्णन यथार्थ विदित होता है। पुराने राजा युद्ध करनेवाले सिपाहियों की रक्षा अपने पुत्र की तरह करते थे, इसलिए उन सिपाहियों को युद्ध करने में बड़ा भारी उत्साह होता था। इन विचारों पर सब राजा लोग चलते थे और सब सामान व देश की रक्षा करते थे और उनके लिए खजाना जमा करने में लग रहते थे। मनुजी ने युद्ध में जय के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और उसी में युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए सिपाहियों के हक भी बतलाये हैं और क्षत्रिय का धर्म पूर्णतया वर्णन किया है। केवल यही नहीं, किन्तु मनुजी ने विद्या की रक्षा और विद्वानों के सत्कार आदि के लिये नियम भी बतलाये हैं।

महाभाष्य में लिखा है कि ब्राह्मण को छह अंगों समेत वेदों की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येतव्यश्चेति।**[3]

इन छह अंगों में व्याकरण मुख्य है और पाणिनि बड़े विद्वान् वैयाकरण हो गये हैं। इनकी जितनी प्रशंसा की जावे उतनी ही कम है। इस महामुनि ने पाँच पुस्तकें बनाई हैं – 1. शिक्षा, 2. उणादिगण, 3. धातुपाठ, 4. प्रातिपदिकगण, 5. अष्टाध्यायी। यह बात निश्चय करने के लिए पाणिनि कब हुए, अनेक प्रकार की तर्कणाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, परन्तु इस विवाद से कुछ लाभ नहीं हो सकता। यह बात तो ठीक है कि पाणिनि बहुत पुराने ग्रन्थकर्त्ता हैं।

प्राचीन समय में चौदह विद्याओं के पढ़ने की रीति हमारे देश में थी। चार वेदों के नाम तो सभी जानते हैं और चार उपवेद और छह अंग मिलकर चौदह होते हैं। चार उपवेद और छह अंग कौन होते हैं उनका विचार करेंगे।

चार उपवेद हैं उनमें से पहला आयुर्वेद है। इस पर जो ग्रन्थ चरक और सुश्रुत मिलते हैं उनके बनानेवाले (अग्निवेश और) धन्वन्तरी ऋषि हैं। इस विषय का वर्णन हमारे सत्यार्थप्रकाश में तीसरे समुल्लास में किया गया है।

---

[1] मनु॰ 7/54–56।

[2] मनु॰ 7/57।

[3] महा॰ अ॰ 1 पा॰ 2 आ॰ 1

दूसरा धनुर्वेद है जिसमें अस्त्र–शस्त्र विद्या का विचार है। इस उपवेद में ब्रह्मास्त्र, पाशुपत–अस्त्र, नारायण अस्त्र, वरुण अस्त्र, मोहन अस्त्र, वायव्यास्त्र आदि की व्यवस्था लिखी है। ये सब अस्त्र वेदार्थ का विचार कर और वस्तुओं के गुण और दोष जानकर तैयार किये जाते थे। क्षत्रिय लोगों को यह धनुर्वेद बड़े परिश्रम से पढ़ाना पड़ता था। यह कहना दिवानापन है कि केवल मन्त्रों के उच्चारण से शस्त्र और अस्त्र तैयार हो जाते थे।

तीसरा गन्धर्ववेद है, जिसमें विद्वानों ने गान–विद्या का वर्णन किया है। उस समय नये वेश की कविता अर्थात् पद, ध्रुवपद, ख्याल, लावनी आदि नहीं गाते थे। प्राचीन आर्य लोग वेदमन्त्रों का रसीला गायन करते थे।

चौथा अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र है। इसका विचार मयसंहिता, वाराहसंहिता, विश्वकर्मसंहिता आदि पुस्तकों में बहुत तरह से किया है।

एक अपूर्व बात इस समय स्मरण हुई है, वह आपको सुनाता हूँ – एक अंग्रेजी विद्वान् डॉक्टर हमको मिला। उसने मुझसे कहा कि हमारे प्राचीन आर्य लोगों में डॉक्टरी औजार का कुछ भी प्रचार न था और उन्हें विदित न था। तब मैंने सुश्रुत का 'नेत्र–अध्याय' जिसमे कि बारीक–से–बारीक औजार का वर्णन है, निकाल कर उसे दिखाया। तब उसको ज्ञात हुआ कि आर्यलोग चिकित्सा में बड़े चतुर थे और उन्हें औजारों की विद्या भी उत्तम प्रकार से ज्ञात थी।

छः वेदांग हैं – 1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. व्याकरण, 4. निरुक्त, 5. छन्द, 6. ज्योतिष – ये सब मिलकर चौदह विद्याएँ हुई। इन सब पुस्तकों का अवलोकन करने में बारह वर्ष लगते हैं और इन ग्रन्थों का दृढ़ अभ्यास करने से बुद्धि में उत्तमता पैदा होती थी। इस समय कुछ ऐसा अनुचित शिक्षा–प्रबन्ध का प्रचार हुआ कि इनमें से एक भी विद्या अत्यन्त परिश्रम करने पर चौबीस वर्ष में भी नहीं आती है। इसका कारण यह है कि केवल तोता–पाठ का घोषा–घोष चलता है। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली बन्द करनी चाहिए। प्राचीन ऋषियों ने विद्या–स्नातक होने को ब्रह्मचारी के लिए केवल बारह वर्षों में सीखी थीं, ऐसा लेख मिलता है और यदि प्राचीन रीति के अनुसार इस समय भी शिक्षा दी जावे तो बारह वर्ष से विशेष समय इस काम में नहीं लगेगा।

अब कुछ थोड़ा–सा विचार छह दर्शनों का किया जाता है –

पहला दर्शन जैमिनिजी का बनाया मीमांसाशास्त्र है। इसमें धर्म और धर्मी का विचार किया है और प्रत्यक्ष वा अनुमान इन्हीं दो प्रमाणों को माना है। धर्म का लक्षण करते हुए इन्होंने वर्णन किया है कि (वेद की) आज्ञा ही धर्म का लक्षण है।

दूसरा कणाद मुनि का बनाया वैशेषिक दर्शन है। इसमें द्रव्य को धर्मी मानकर गुण आदि को धर्म स्थापित करके विचार किया है। इन्होंने भी दो प्रमाण माने हैं और छह पदार्थों का निरूपण किया है।

तीसरा गौतम का बनाया न्याय–शास्त्र है। इसमें यह विचार प्रारम्भ करके धर्मी का धर्म और धर्म का धर्मी क्यों नहीं होता ? प्रमाण और प्रमेय का परस्पर सम्बन्ध बतलाया है और सोलह पदार्थ माने हैं।

इस पर कोई–कोई यह कहते हैं कि इन शास्त्रों में परस्पर विरोध है। इसलिए पहले विरोध शब्द के अर्थ पर विचार करना चाहिए। यदि एक विषय में भिन्न मत का प्रवेश हो तो उसको विरोध

कहते हैं, परन्तु यदि अनेक विषयों के विचार से अनेक विचारों का वर्णन हो तो उसको विरोध नहीं कहते हैं। ये छहों दर्शन अपने–अपने लेखों पर चलने वाले हैं।

आर्योद्देश्यरत्नमाला में प्राप्त शिक्षा विषयक तत्व

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "आर्योद्देश्यरत्नमाला" नामक लघु पुस्तिका में शिक्षा विषयक अनेक तत्वों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जिसमें ईश्वर, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, सत्यभाषण इत्यादि 100 शब्दों की परिभाषा दी गई है। इसमें विद्या की परिभाषा करते हुए कहा गया है –

"विद्या" – जिससे ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर धन से यथायोग्य उपकार लेना होता है, उसका नाम विद्या है। इसके विपरित जो हो वह अविद्या अर्थात् जो विद्या से विपरीत है, भ्रम, अन्धकार और अज्ञानरूप है उसको अविद्या कहते हैं।

इसी क्रम में पढाने वाले आचार्य व गुरु के क्या गुण होने चाहिए यह बताते हुए आचार्य की परिभाषा प्रदान की है – "आचार्य" – जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढा देवें, उसको आचार्य कहते हैं।

इसी प्रकार गुरु की परिभाषा भी इस प्रसंग में द्रष्टव्य है – "गुरु" – जो वीर्यदान से लेके भोजनादि कराके पालन करता है, इससे पिता को गुरु कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय का अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा देवे उसको भी गुरु अर्थात् आचार्य कहते हैं।[1]

शिक्षा देने व लेने वालों में सदाचार व शिष्टाचार होना परम आवश्यक होता है, एतदर्थ इन शब्दों में परिभाषा करते हुए लिखते हैं – शिष्टाचार अर्थात् जिसमें अशुभ गुणों का त्याग किया जाता है, वह शिष्टाचार कहाता है।

सदाचार अर्थात् जो सृष्टि से लेकर आज पर्यन्त सत्पुरुषों का वेदोक्त आचार चला आया है, कि जिसमें सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है, उसको सदाचार कहते हैं।[2]

इस प्रकार संक्षेपतः यह निश्चय होता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस लघु पुस्तिका में शिक्षा विषयक अनेक शब्दों की परिभाषा क्रम में शिक्षाशास्त्रीय आर्ष दृष्टि स्थापित की है।

संस्कृत वाक्य प्रबोध में प्राप्त शिक्षा विषयक तत्व

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित "संस्कृत वाक्य प्रबोध" नामक पुस्तक में संस्कृत सम्भाषण के माध्यम से शिक्षा विषयक तत्व एवं पठन–पाठन विधि का दिग्दर्शन होता है। इसमें लगभग 52 संवाद है जिसमें भिन्न–भिन्न विषयों पर संस्कृत में संवाद करने का अभ्यास करते हुए शिक्षा शास्त्रीय योगदान दृष्टिगत होता है। इसमें सर्वप्रथम "गुरुशिष्यवार्तालापप्रकरणम्" प्राप्त होता है जहाँ गुरु अपने शिष्य को संस्कृत भाषा में संवाद करते हुए दिनचर्या विषयक वार्तालाप के क्रम में क्या पढ़ना चाहिए ? कब सोना चाहिए ? कब उठना चाहिए ? वेदांगों के नाम क्या हैं ? सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र कब करना चाहिए ? इत्यादि प्रश्नों से जीवन एवं शिक्षा में धर्म, संस्कार, उत्तम व्यवहार की स्थापना के उद्देश्यों से इन संस्कृत वाक्यों का लेखन प्रश्न एवं उत्तर के रूप में किया है। इसमें सबसे पहले

---

[1] आर्योद्देश्यरत्नमाला पृ० 10

[2] आर्योद्देश्यरत्नमाला पृ० 10

गुरु प्रश्न करते हैं – भोः शिष्य। उत्तिष्ठ, प्रातः कालो जातः। अर्थात् हे शिष्य। उठो सवेरा हुआ। पुनः शिष्य कहता है, उत्तिष्ठामि – उठता हूँ। इस प्रकार इस लघु पुस्तिका में अनेकों प्रकरणों के माध्यम से दयानन्द सरस्वती ने अपनी शिक्षा शास्त्रीय दृष्टि स्थापित की है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने **संस्कारविधि** नामक स्वग्रन्थ में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कारों की महती आवश्यकता विवेचित की है। इस ग्रन्थ को पढ़कर यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य को शिक्षित होने के साथ–साथ संस्कारित होना भी अत्यन्त आवश्यक है। संस्कार के बिना उच्च शिक्षा भी हमारे समाज को विकृत कर देती है। अतः शिक्षा में संस्कार तथा धर्म का होना अतीव सहायक आवश्यक व उपयोगी होता है।

सत्यार्थप्रकाश में प्राप्त शिक्षा विषयक तत्व

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में पदे पदे शिक्षा की आर्ष दृष्टि की उपस्थापना की है, वे सर्वत्र सभी का शिक्षित, संस्कारित, धार्मिक होने पर बल देते हैं, वे सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं – जो स्त्री न पढ़े तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्योंकर हो सके।[1]

महर्षि दयानन्द ने बालक एवं बालिकाओं के पृथक् पृथक् अध्ययन पर बल दिया है। वे कहते हैं बालक एवं बालिकाओं की पाठशालाएं अलग–अलग हों तथा उनके अध्यापक–अध्यापिका भी अलग हो। यथा – जब आठवें वर्ष में पाठशाला में जाकर आचार्य अर्थात् विद्या पढ़ाने वाले के पास रहते हैं तभी से उनका नाम ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी हो जाता है क्योंकि, वे ब्रह्म वेद और परमेश्वर के विचार में तत्पर हो जाते हैं।[2]

इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश में वर्णन प्राप्त होता है – द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी याथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी–अपनी पाठशाला में भेज दें।[3]

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में पदे पदे स्त्री शिक्षा की बात की है वे स्त्रियों के लिए राजदूती, ज्योतिषी, योगाभ्यासिनी, उपदेशिका, विदुषी महिला, वैज्ञानिक महिला, न्यायधीष, शारिका, ईश्वर उपासिका, यशाधिकारिणी, राजनीतिका, महिला मन्त्री, महिला योद्धा इत्यादि शब्दों का बहुधा प्रयोग करते दृष्टिगत होते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के भाष्य लिखने से पूर्व ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका नाम से एक विशाल ग्रन्थ की रचना की जिसमें वेद विषय को विज्ञान, चिकित्सा वैधकशास्त्र, गणित इत्यादि अनेकों विषयों पर वेदमन्त्रों के भाष्य सहित विस्तृत भूमिका लिखी है। इस ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द की शिक्षा शास्त्रीय दृष्टि ध्यातव्य है, तद्यथा – अपने सन्तानों का यथायोग्य पालन शिक्षा से विद्वान् करके, सदा धर्मात्मा और पुरुषार्थी बनाते रहो।[4] इसी प्रकार अन्य स्थल पर कहते हैं – लड़कों और लड़कियों को बोलने, सुनने, चलने, बैठने–उठने, खाने–पीने, पढ़ने–विचारने तथा पदार्थों के जानने और जोड़ने आदि की शिक्षा भी करनी चाहिए।[5] एक अन्य प्रसंग में आचार्य की परिभाषा वर्णित है यथा – आचार्यः

---

[1] सत्यार्थप्रकाश 3, 50
[2] ऋ॰ भा॰ भू॰ 284
[3] सत्यार्थप्रकाश समुल्लास – 3, पृ॰ 26
[4] ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त विषय – 80
[5] ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पठनपाठन विषय – 247

कस्मात् ? आचारं ग्राहयति आचिनोति अर्थान् आचिनोति बुद्धिम् इति वा' अर्थात् आचार्य उसको कहते हैं कि जो असत्याचार को छुड़ा के सत्याचार का और अनर्थों को छुड़ा के अर्थों का ग्रहण कराके ज्ञान को बढ़ा देता है।[2]

उपसंहार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त शिक्षा शास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाकर हम वर्तमान समय की शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन कर सकते हैं। आज की शिक्षा पद्धति से हमारी नई युवा पीढ़ि नैतिक मूल्यों, भारतीय सांस्कृतिक विरासत तथा मानवीय संवेदनाओं से सर्वथा वंचित हो रही है साथ ही अपनी उत्तरदायित्वों तथा देश के प्रति अपने कर्तव्यों से विमुख हो रही है। अतः महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षा शास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाकर हम पुनः भारतवर्ष को विश्वगुरु पद पर समलंकृत कर सकते हैं।

संदर्भ/सहायक ग्रंथ सूची- References/ bibliography

- उपदेश मंजरी , प. युधिष्ठिर मीमांसक, बहालगढ़, सोनीपत, 2026 वि. सं.
- दयानंद प्रवचन संग्रह, युधिष्ठिर मीमांसक, बहालगढ़, सोनीपत, 2039 वि. सं.
- ऋषि दयानंद का पत्र व्यवहार, मुंशीराम जिज्ञासु, जालंधर, पंजाब 1966 वि. स.
- ऋषि दयानंद के पत्र और विज्ञापन, पंडित भगवत दत्त, अमृतसर, पंजाब, 2012 वि. सं.
- ऋषि दयानंद के पत्रों के परिशिष्ट, अमृतसर, पंजाब, 2014 वि. सं.
- ऋषि दयानंद के ग्रंथों का इतिहास, अजमेर, राजस्थान, 2006 वि. सं.
- दयानंद चरितामृतम्, मुंशी दयाराम, आर्य पुस्तकालय लाहौर, तृतीय संस्करण 1923 ईस्वी
- दयानंद लघु ग्रंथ संग्रह, सं. युधिष्ठिर मीमांसक, प्रकाशक रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ सोनीपत, 1975
- सत्यार्थ प्रकाश (शताब्दी संस्करण) संपा. पं. युधिष्ठिर मीमंसक, प्रका. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, 1975
- संस्कार विधि संपादक युधिष्ठिर में मानसिक प्रकाशक रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़ सोनीपत 1974
- आर्य विभिन्न, संपादक सत्यानंद शास्त्री प्रकाशक- विरजानंद वैदिक संस्थान गाजियाबाद उत्तर प्रदेश, 2009
- मंजरी पुणे प्रवचन, संपादक डॉक्टर भवानी लाल भारतीय, प्रकाशक वैदिक पुस्तकालय अजमेर, 1976
- काशी शास्त्रार्थ, संपादक डॉक्टर भवानी लाल भारतीय, प्रकाशक विजय कुमार गोविंदराम हसानंद, दिल्ली, 1999
- वेद और ऋषि दयानंद, श्रीनिवास शास्त्री, प्रकाशक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1980
- वेद भाष्य पद्धति को दयानंद सरस्वती की देन, डॉक्टर सुधीर कुमार गुप्त, प्रकाशक भारतीय मंदिर अनुसंधान शाला, जयपुर, 1980
- वेद भाष्यकारों की वेदार्थ प्रक्रियाएं (महर्षि दयानंद की वेद भाष्य प्रक्रिया के विशेष विचार सहित) डॉ रामनाथ वेदालंकार, प्रकाशक विश्वविद्यालय संस्कृत भारती शोध संस्थान, होशियारपुर, 1980

---

[1] निरुक्त॰ अ॰ 1/4

[2] ऋ॰ भा॰ भू॰ पृ॰ 183

- वेद प्रमाण मीमांसा तथा ऋषि दयानंद, श्रीनिवास शास्त्री, प्रकाशक गुरुकुल कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1981
- वेद वेत्ता तथा ऋषि दयानंद, श्रीनिवास शास्त्री, प्रका. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1973
- दयानंद दर्शन : एक अध्ययन, श्रीनिवास शास्त्री, प्रका. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1990
- स्वामी दयानंद के दार्शनिक सिद्धांत, संपा. भवानी लाल भारतीय, दयानंद शोध पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 1982
- स्वामी दयानंद सरस्वती व्यक्तित्व एवं विचार, भवानी लाल भारतीय, प्रका. सत्य धर्म प्रकाशन, गुरुकुल कंवरपुरा, जयपुर, 2006
- स्वामी दयानंद सरस्वती व्यक्तित्व विचार और मूल्यांकन, भवानी लाल भारतीय, प्रका. दयानंद अध्ययन संस्थान, जोधपुर, 2003
- महर्षि दयानंद और स्वामी विवेकानंद, आर्य प्रकाशन, पुस्तकालय आगरा, 1957
- Contribution of Arya Samaj in the making of modern India, Radheshyam Parekh, S.A.P Sabha New Delhi, 1965
- Arya Samaj and Indian Nationalism, Hanpati Pande, 1970, S Chand and Corporation, New Delhi, 1999
- A critical study of contribution of Arya Samaj to Indian education, Saraswati Pandit, 1974, Arya Pratinidhi Sabha, New Delhi,1989
- Arya Samaj and the theosophical society, Shyam Sundar Lal, 1925
- life of world teacher Dayanand Saraswati, Harbilas Sharda, Ajmer, 1942
- life of Dayanand Saraswati, SN Prasad, Arsha Sahitya Prachar Trust, 1938
- Dayanand Saraswati his life and ideas, Oxford University Press, New Delhi, 1978